ओ३म्

**‘सभी मनुष्यों पर ईश्वर के असंख्य उपकारों के कारण सभी उसके ऋणी’**

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

 क्या मनुष्य ईश्वर का ऋणी है? यदि है तो वह ईश्वर का ऋणी कब व कैसे बना? मनुष्य ईश्वर का ऋणी कब बना, इस प्रश्न का उत्तर है कि वह सदा से ईश्वर का ऋणी है और हर पल व हर क्षण उसका ऋण बढ़ता ही जा रहा है। यह बात और है कि स्वभाव से धार्मिक होने से ईश्वर मनुष्य पर जो भी कृपा करता है तथा अपने ऐश्वर्य की वर्षा आदि करता है, वह उसकी अहैतुकी अर्थात् प्रयोजन व स्वार्थ रहित कृपा होती है। ईश्वर की कृपा के पीछे उसका अपना कोई निजी लाभ, प्रयोजन, स्वार्थ व हित नहीं होता। वह तो पूर्ण काम अर्थात् पूर्ण आनन्द में हर पल व हर क्षण रहता है। धार्मिक होने के कारण ही वह एकदेशी, अल्पज्ञ व ज्ञान व गति गुण वाली जीवात्माओं के हित व उनके सुख आदि की इच्छा से उनके पूर्व जन्म के कर्मानुसार उन्हें मनुष्य आदि नाना योनियों में से किसी एक योनि में जन्म देता है। जन्म देने में ईश्वर को जीवात्मा के भावी माता-पिता का चयन करना होता है जिसे वह करता है। उस जीवात्मा के लिए एक शरीर का निर्माण ईश्वरीय नियमों से होता है और निर्माण पूरा होने पर उसका जन्म होता है। मनुष्य योनि में जन्म लेकर वह जीवात्मा अपने स्वाभाविक ज्ञान का उपयोग कर नैमित्तिक ज्ञान प्राप्त कर व अपने जीवन के उद्देश्य व कर्तव्यों को जानकर सदाचरण आदि कर्मों में प्रवृत्त होता है। शरीर को स्वस्थ रखना, उसकी शक्तियों में वृद्धि, स्थिरता व उसे निरोग रखने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है जिसके लिए उसे कृषि आदि कोई एक कार्य व व्यवसाय करना होता है। व्यवसाय से प्राप्त धन व द्रव्यों से वह भोजन, आवास व वस्त्र आदि की आवश्यकताओं को पूरा करता है। इन आवश्यकताओं सहित कर्तव्य व अकर्तव्य के बोध के लिए उसे किसी ज्ञानी आचार्य की शरण में जाकर अध्ययन करना होता है। आचार्य उसकी बुद्धि का विकास व उन्नति उसे ज्ञान देकर करता है। यदि आचार्य ईश्वर व सृष्टि विषयक सत्य वैदिक ज्ञान से पूर्ण है तो उसका शिष्य उसके अनुरुप सच्चा ज्ञानी बनता है। यदि आचार्य अल्प या मिथ्याज्ञानी है तो उसी के अनुरुप शिष्य भी बनता है व होता है। ईश्वर क्योंकि इस सृष्टि का स्रष्टा वा रचयिता है, पालनकर्ता व संहारकर्ता है, अतः जीवात्माओं को मनुष्य जन्म में नैमित्तिक ज्ञान की पूर्ति के लिए उसने सृष्टि की आदि में उत्पन्न चार ऋषियों को चार वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान दिया है और फिर उन अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा चार ऋषियों को प्रेरणा कर ब्रह्मा जी आदि अन्य ऋषियों के सहयोग से उनका प्रचार प्रसार भी कराता है। सृष्टि में वेदाध्ययन की परम्परा प्रवृत्त कराकर मनुष्यों के सुख के लिए ईश्वर उसे प्रलय काल तक चलाना चाहता है। इसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ से प्रचलित होकर वेदों की यह परम्परा वर्तमान समय तक चली आई है और आगे भी चलेगी। किसी कारण यदि मनुष्य वेदों की रक्षा वा वेदाध्यन में आलस्य व प्रमाद करेंगे तो इसके रुकने व बन्द होने का दोष भी मनुष्यों पर ही होगा जिससे वर्तमान व भविष्य की सन्तत्तियों को हानि होगी। महर्षि दयानन्द (1825-1883) के समय में ऐसी ही स्थिति बनी थी। वेद व वैदिक ज्ञान सर्वथा लुप्त होने के कागार पर था परन्तु ऋषि दयानन्द ने आकर वा परमात्मा ने उन्हें भेजकर उस स्थिति का सुधार किया। ऋषि दयानन्द के अपूर्व पुरुषार्थ व तप से आज वेद सर्वसुलभ हैं। इनकी रक्षा व वेद विद्या की उन्नति करना सभी मनुष्यों का परम धर्म है। संसार में नाना मत-मतान्तर हैं। उनकी धर्म सम्मत शिक्षायें ही मनुष्यों को माननीय होती हंै, शेष प्रायः अकर्तव्य ही होती हैं। वेदों की सभी शिक्षाओं का पालन ही धर्म है। मनुष्य को मत-मतान्तरों में न भटक कर वेदों की शरण में आना चाहिये और वैदिक जीवन व्यतीत कर अपने जीवन का कल्याण करना चाहिये।

ईश्वर ने मनुष्यों वा जीवात्माओं के सुख के लिए यह सृष्टि बनाई, मनुष्यों को अमैथुनी व मैथुनी सृष्टि में जन्म दिया और वेदों का ज्ञान देकर कर्तव्य व अकर्तव्यों का बोध कराया, यह एक प्रकार से उसका संसार की समस्त मानव जाति पर ऋण है। यदि हमें मकान लेना होता है तो भारी धनराशि देकर खरीदना पड़ता है। यदि पैसे न हो तो ऋण प्राप्त करना होता है। भोजन के लिए भी धन चाहिये, वह भी पुरुषार्थ से कमाने के साथ ऋण लेकर ही प्राप्त किया जाता है। विद्यार्जन के लिए भी आजकल माता-पिता धन का व्यय करते हैं। जिनके पास धन नहीं वह शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। यह सृष्टि और हमारा शरीर एक प्रकार से हमारे निवास गृह हैं। वेदों का ज्ञान ही सच्ची व मुकम्मल शिक्षा है। अतः सभी मनुष्य व प्राणी ईश्वर के ऋणी है। ऋण चुकाने के लिए मनुष्य के पास ईश्वर को देने के लिए किसी प्रकार का कोई अपना पदार्थ व धन नहीं है। अतः वह सदा से ईश्वर का ऋणी है और हमेशा रहेगा।

परमात्मा न्यायकारी भी है। वह सभी जीवात्माओं को न्याय प्रदान करता है। हम मनुष्य योनि में हों या अन्य किसी योनि में, यदि कोई हमारे विरुद्ध कोई अपराध करता व हमें अनावश्यक कष्ट देता है तो अपराधी को दण्ड देने का काम भी ईश्वर ही करता है। इसके साथ परमात्मा ने मनुष्य व सभी प्राणियों को आत्मरक्षा के साधन दिये हैं। उनसे भी वह परमात्मा का ऋणी है। यदि कोई किसी के प्रति अधर्म व अन्याय का व्यवहार करता है तो उसे कहा जा सकता है कि तेरे कुकर्मों का तुझे आगामी जीवन व परजन्म में अवश्य फल मिलेगा। हम संसार में मनुष्यों को अनेक दुःखों से ग्रसित देखते हैं। यह सभी दुःख मनुष्यों के अशुभ व पाप कर्मों के कारण ही होते हैं। यदि मनुष्य दुःखों को धैर्य के साथ सहन करते हुए शुभ कर्मों का आचरण व वैदिक धर्म का पालन करता है तो कालान्तर में न केवल उसके सभी दुःख दूर हो जाते हैं अपितु वह सुखों को प्राप्त भी करता है। यह व्यवस्था सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। यदि किसी दुःख का कारण समझ में न आये तो उसे पूर्व जन्मों का भोग भी माना जा सकता है। चाणक्य ने सुख का आधार धर्म को बताया है। धर्म में तप भी सम्मिलित है। तप कहते ही धर्माचार में कष्ट सहन करने को। अतः संसार में विद्यमान त्रिविध दुःखों को तप मानकर सहन करने से भी उन पर विजय पाई जा सकती है। श्री लाल बहादुर शास्त्री और श्री नरेन्द्र मोदी जी का पूर्व व बाद का जीवन इसके उदाहरण माने जा सकते हैं। अतः तप से प्राप्त सुख जो हमें ईश्वरीय व्यवस्था से मिलता है, जिसके लिए हमने ईश्वर को कुछ दिया नहीं है, वह भी एक प्रकार से मनुष्यों पर ईश्वर का ऋण ही होता है।

हमें कोई व्यक्ति कुछ वस्तु या पदार्थ देता है तो हम उसका धन्यवाद करते हैं। हम किसी को मार्ग भी बता दें तो भी उसके ऋण स्वरूप हम उसका धन्यवाद करते हैं। डाक्टर से हम रोग का उपचार पूछते हैं तो उसे फीस में पैसे देते हैं और धन्यवाद भी करते हैं। धन्यवाद का अर्थ ही हमें उस व्यक्ति के प्रति ऋण का बोध सा कराता है। ईश्वर ने हमें असंख्य पदार्थ दिये हैं और हमारे शरीर में चलने वाली एक एक श्वांस ईश्वर की ओर से हमें व सभी प्राणियों को निःशुल्क सेवा वा देन है। अतः हमें उसके प्रति ऋण व कृतज्ञता का भाव रखना चाहिये। उसका ऋण ऐसा है जो किसी भी प्रकार से उतारा नहीं जा सकता। उसके लिए हमारे पास अपना कुछ है ही नहीं जिससे कि ईश्वर को सुख मिलता हो। अतः हमें कृतज्ञता का भाव रखते हुए उसका धन्यवाद करना चाहिये। इसी को ध्यान में रखते हुए हमारे विद्वान ऋषियों ने प्रातः व सायं सन्ध्या व ईश अर्चना का विधान किया है। संसार की सभी उपासना पद्धतियों व भक्ति आदि कार्यों में वैदिक सन्ध्या उत्तम है। ऋषि दयानन्द ने इसे वेदों के आधार पर बनाया है। इसमें ईश्वर के प्रति कृतज्ञता रखते हुए उसके धन्यवाद का पूरा भाव प्रदर्शित हो जाता है और साथ में ईश्वर से अनेक प्रार्थनायें भी होती हैं जिसमें एक प्रार्थना समृद्ध धर्मानुसार जीवन व्यतीत करते हुए इष्ट सिद्धि सहित मोक्ष की प्राप्ति भी है। अच्छा स्वास्थ्य, लम्बी आयु, बलवान इन्द्रिय व शरीर की भी प्रार्थनायें भी सन्ध्या में हैं। मनसा परिक्रमा मन्त्रों में ईश्वर को सभी दिशाओं में उपस्थित मानकर उसकी अनेक शक्तियों का स्मरण किया जाता है व उसके उपकारों के लिए उसे अनेक बार नमन किया जाता है। सन्ध्या के अन्त में भी नमस्कार मन्त्र का विधान है और तीनों तापों व दुःखों से सदा बचे रहें, यह कहकर सन्ध्या को समाप्त करते हैं। अतः ईश्वर के ऋ़णी सभी मनुष्यों को वैदिक धर्म का पालन करते हुए सन्ध्या, यज्ञ व वेदाध्ययन आदि वेदोक्त कार्य करते हुए वैदिक जीवन व्यतीत कर ईश्वर के ऋण से उऋण होने के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने के साथ उसको नमन करना चाहिये। इसी से हमारा कल्याण होगा और हम ईश्वर के मित्र व सखा बन सकेंगे। हमने ईश्वर के ऋण विषय पर कुछ विचार किया, उसे ही प्रस्तुत कर रहे हैं। यदि पाठकों को यह अच्छा लगता है तो हमारा श्रम सार्थक होगा। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**